सामुदायिक पुनरुत्थानवाद और इतिहास-लेखन

निर्मल कुमार पाण्डेय

आजकल अखिल भारतीय समरस समाज की आवश्यकता पर लेखन-प्रतिलेखन की बयार-सी चल रही है। इसमें बौद्धिक चेतना का द्वंद्व मुखर दिखाई पड़ रहा है। राष्ट्रवादी विमर्श के तहत हिंदू और हिंदी की बात करने और उस पर विचार रखने को नकारात्मक ढंग से लेने की उत्कट प्रवृत्ति नागरिक समाज के चिंतन की मुख्य धारा में प्रतिबिंबित हो रही है। ऐसे समय में सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन से तीन खण्डों में *काशी प्रसाद जायसवाल* (संचयन) का प्रकाशन एक सार्थक और स्वागतयोग्य प्रयास है। काशी प्रसाद जायसवाल के व्यक्तित्व के बहुआयामी पक्षों, जैसे इतिहासकार, साहित्यकार, मुद्राशास्त्री, पुरातत्वविद्, भाषाविद्, वकील और पत्रकार को समेटने वाला यह संचयन हमें उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उठी भारतीय राष्ट्रवादी वैचारिकी से बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक की सैर कराता है।

जायसवाल की सक्रियता वाली इस अवधि में शिक्षा संबंधी वैचारिक प्रगति ने धार्मिक समुदायों को प्रेरित किया कि वे अपनी कमियों को दूर कर धर्म के स्तर पर उसे सुदृढ़ और परिपक्व बनाएँ। औपनिवेशिक हस्तक्षेप द्वारा धार्मिक अस्मिता के मुद्दे को समाज सुधार हेतु बनाई गयी नीतियों के मार्फ़त गतिशील करें पर समुदायवादी पुनरुत्थान की राजनीति के रूप में भारतवासियों को एक आधुनिक अस्मिता ग्रहण करने का अवसर मिला। राज्य ने उन्हें राजनीतिक पहचान की गारंटी दी जिसकी वजह से भारत के अतीत के पुनर्लेखन का मार्ग प्रशस्त हुआ। बीसवीं सदी में स्वाधीनता के लिए उठा भारतीय स्वर और मुखर हुआ। इस प्रक्रिया के दौरान स्वतंत्रता संघर्ष को अपनी कई समकालीन प्रवृत्तियों से और कभी-कभी तो स्वयं में अंतर्भूत प्रवृत्तियों से भी संघर्ष करना पड़ा। ऐसे जटिल समय को समझने में *काशी प्रसाद जायसवाल* (संचयन) सार्थक मददगार हो सकता है।

समीक्षा
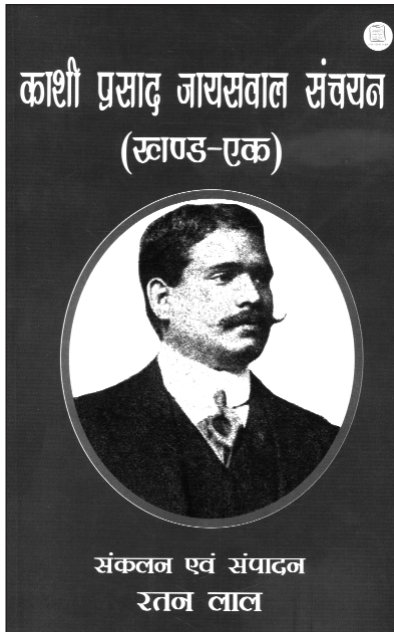
काशी प्रसाद जायसवाल (तीन खण्ड)
(2018)
रतन लाल (संकलन एवं संपादन)
सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली
मूल्य (प्रति खण्ड) : 180 रुपये
(पेपरबैक) पृष्ठ : 711

I

एक दक्ष लेखनी का पदार्पण

रतन लाल अपने संचयन को जायसवाल के जीवन परिचय की भूमिका से शुरू करके उनके लेखन को कालक्रम की दृष्टि से तीन भागों में बाँटते हैं : पहला (1898–1912), *पाटलिपुत्र* के सम्पादक के रूप में दूसरा (1914–15), और तीसरा 1928 से उनके जीवन के अंत तक अर्थात् 1937 तक। संचयन के खण्डों का निर्धारण भी मोटे तौर पर इसी कालक्रम के हिसाब से किया गया है।

27 नवम्बर, 1881 को बंगाल प्रेसीडेंसी के झालदा में अपने भाइयों के साथ लाख का व्यापार करने वाले साहू महादेव प्रसाद के यहाँ जन्मे काशी प्रसाद जायसवाल को बचपन में ही उनके पिता अपने गृह ज़िला उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ले आये। उनकी शुरुआती शिक्षा-दीक्षा वहीं हुई। बाद में वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद आगे की शिक्षा के लिए ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी के जीसस कॉलेज गये जहाँ 1909 में उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास में परास्नातक की उपाधि अर्जित की। इस दौरान उन्हें डेविस स्कॉलरशिप इन चाइनीज़ भी मिली। 1910 में वे बैरिस्टर-एट-लॉ रहते हुए लंदन के बार ऑफ़ लिंकंस इन द्वारा निमंत्रित किये गये। भारत वापसी के उपरांत कलकत्ता में उन्होंने वकालत शुरू कर दी। यहीं उनकी भेंट सर आशुतोष मुखर्जी से हुई जिनकी प्रेरणा से जायसवाल प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में और अध्ययन के लिए उन्मुख हुए। उन्हें कलकत्ते में ही युनिवर्सिटी में प्राचीन इतिहास के व्याख्याता के तौर पर भी नौकरी मिली। तत्कालीन गवर्नर सर एडवर्ड गेट द्वारा संस्थापित बिहार ऐंड ओडीशा रिसर्च सोसाइटी में के.पी. जायसवाल ने शिरकत करते हुए सोसाइटी की प्रथम परिषद् की सदस्यता ग्रहण की। 1921 में शुरू हुई इस सोसाइटी के जर्नल से जुड़े जायसवाल आजीवन इसका सम्पादन किया। सोसाइटी की गतिविधियों और अपनी व्यावसायिक ज़िम्मेदारियों के बावजूद उन्होंने निरंतर लिखना जारी रखा। पुरातात्विक उत्खनन में दिलचस्पी के कारण जायसवाल ने स्वयं पटना का पुरातात्विक उत्खनन संचालित किया, और उल्लेखनीय पुरातात्विक सामग्रियाँ प्राप्त कीं जो आज भी पटना संग्रहालय में संरक्षित हैं। पटना संग्रहालय के लिए राखालदास बनर्जी के साथ संयुक्त रूप से कार्य करते हुए जायसवाल को ओडीशा के खण्डगिरी के हाथीगुम्फ़ा अभिलेख का एक साँचा प्राप्त हुआ। इस अभिलेख का अनुवाद और टीका सहित एक संयुक्त संस्करण सबसे पहले सोसाइटी के जर्नल (1917) में और बाद में कुछ उल्लेखनीय संशोधनों और व्याख्या के साथ *एपिग्राफ़िका इण्डिका* में प्रकाशित हुआ।

1917 में जायसवाल का कलकत्ते में टैगोर लॉ लेक्चर्स में भाषण देने के लिए चयन हुआ। 1930 में जब आल इण्डिया ओरिएंटल कांफ्रेंस का पटना में आयोजन हुआ, वे स्वागत समिति के सभापति बनाए गये। अपने उद्घाटन भाषण के दौरान उन्होंने सूचनाओं और तथ्यों से भरपूर अपनी वाक्पटु उपस्थिति दर्ज की। 1933 में बड़ौदा में हुई आल इण्डिया ओरिएंटल कांफ्रेंस के वे अध्यक्ष चुने गये।

मॉडर्न रिव्यू में प्रकाशित अपने कुछ लेखों द्वारा जायसवाल ने जल्द ही मौलिक शोध के क्षेत्र में

स्वयं को स्थापित कर लिया। 1914 में जायसवाल पटना आ गये और जीवनपर्यंत वहीं रहे। रतन लाल ने दिखाया है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, राजेंद्र प्रसाद और दिनकर जैसी हस्तियाँ जायसवाल की प्रतिभा और अध्यवसाय से प्रभावित थीं। इन प्रशंसकों ने उन्हें घमण्डाचार्य, बैरिस्टर साहब, कोटाधीश, सोशल रिफ़ॉर्मर, विद्यामहोदधि और पुण्यश्लोक जैसी उपाधियों से याद किया है। बिहार राज्य अभिलेखागार में मौजूद हिस्ट्रीशीट, फ़ाइल न. 118 ब में जायसवाल को 'डेंजरस रिवोलूशनरी और तत्कालीन भारत का क्लेवेरेस्ट इण्डियन' क़रार दिया गया है। इनके अलावा जायसवाल स्वयं अपने विवादास्पद और व्यंग्यात्मक लेखन के लिए 'महाब्राह्मण' और 'बाबा अग्निगिरी' नाम का इस्तेमाल भी करते थे। हालाँकि रतन लाल ने परवर्ती विद्वानों और इतिहासकारों द्वारा जायसवाल को दिये गये राष्ट्रवादी तमग़े को उद्धरण चिह्नों में बाँध कर उन्हें राष्ट्रवादी मानने से गुरेज़ किया है, पर साथ ही स्वीकार भी किया है कि जायसवाल का जीवन वैविध्यपूर्ण वाङ्मय की तरह रहा है। उनकी लेखनी की व्यापकता किसी को भी इस पसोपेश में डाल सकती है कि जायसवाल पहले इतिहासकार हैं या साहित्यकार, मुद्राशास्त्री, पुरातत्वविद्, भाषाविद्, वकील या पत्रकार हैं?

संस्कृत, हिंदी, अंग्रेज़ी, चीनी, फ्रेंच, जर्मन और सम्भवतः बांग्ला जानने वाले बहुभाषी विद्वान जायसवाल मुख्यतः हिंदी और अंग्रेज़ी में ही लिखते थे। अंग्रेज़ी बाहरी दुनिया के विद्वानों, पेशेवर इतिहासकारों और पाठकों के लिए तथा हिंदी स्थानीय भारतीय पाठकों, सुधीजनों और साहित्यकारों के लिए थी। रतन लाल बताते हैं कि जायसवाल के बौद्धिक प्रशिक्षण की शुरुआत चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' की छत्रछाया में हुई, जहाँ से उन्हें लेखन की प्रेरणा मिली।

उनका पहला लेख 'नागरी प्रचारिणी सभा के प्रश्नों का उत्तर' केवल सत्रह साल की वय में *हिंदी प्रदीप* में 1898 में प्रकाशित हुआ। हालाँकि जायसवाल का ज़्यादातर हिंदी-लेखन हिंदी नवजागरण की प्रमुख पत्रिका *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ, लेकिन कुछ लेख उन्होंने नागपुर से निकलने वाले *हिंदी केसरी* में भी छपे। साथ ही जायसवाल ने *कलवार गज़ट* नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया और वे 1914 में पटना से निकलने वाले *पाटलिपुत्र* नामक हिंदी साप्ताहिक के संस्थापक-सम्पादक भी रहे। रतन लाल ने माना है कि जायसवाल का ज़्यादातर हिंदी लेखन पहले चरण में ही प्रकाशित हुआ। उस समय भारतेंदु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्ट की झण्डाबरदारी में हिंदी भाषा और नागरी लिपि को आधिकारिक मान्यता दिलाने का आंदोलन चल रहा था। *पाटलिपुत्र* के प्रकाशन के तक़रीबन चौदह साल बाद 1928 से जायसवाल ने फिर हिंदी में लिखना शुरू किया, लेकिन इसमें अधिकतर उनके अंग्रेज़ी लेखन का अनुवाद है। रतन लाल के मुताबिक़ जिस अवधि में जायसवाल ने लिखना शुरू किया, उसे हिंदी नवजागरण का काल माना जाता है। वसुधा डालमिया और वीरभारत तलवार के हवाले से वे इसे हिंदी और उर्दू भाषा के साम्प्रदायिकीकरण का काल मानने से भी गुरेज़ नहीं करते। वे कहते हैं कि नागरी प्रचारिणी सभा और बाद में हिंदी साहित्य सम्मलेन की अगुआई में एक नयी संस्कृतनिष्ठ हिंदी को बढ़ावा देने और हिंदी से उर्दू और फ़ारसी शब्दों को बाहर धकेलने का प्रयास चल रहा था। रतन लाल ने संचयन के प्रथम खण्ड में इस विमर्श को दिखाते हुए बताया है कि कैसे जायसवाल ने अपने लेख 'नागरी प्रचारिणी सभा के प्रश्नों के उत्तर' में भाषा की शुद्धता पर ज़ोर देते हुए लिखा कि भारतेंदु ने नयी प्रचलित भाषा और साधु भाषा में स्पष्ट अंतर किया है, और यह स्वागतयोग्य क़दम है, इसलिए फ़ारसी मिश्रित हिंदी नहीं लिखनी चाहिए। लेख में जायसवाल ने यह भी स्पष्ट किया कि साधु भाषा और प्रचलित भाषा में क्या-कुछ लिखा जाना चाहिए। जायसवाल ने उपन्यास, जीवन चरित, दर्शन, विशेष विषयों पर लेख और साहित्य विषयक ग्रंथों की भाषा साधु में, और साधारण इतिहास, समाचार पत्र इत्यादि के लिए प्रचलित भाषा के प्रयोग की वकालत की है। लिंग और व्याकरण के मुद्दे पर जायसवाल मानते हैं कि लिंग का प्रयोग लोक-व्यवहार पर निर्भर करता है, व्याकरण उसके लिए संस्कृत, प्राकृत या हिंदी में कभी मेंड़ न बाँध सका, न कभी बाँध सकेगा।'

अठारह वर्ष की उम्र में जायसवाल ने 'हिंदी-उपन्यास लेखकों को उलाहना' शीर्षक से एक लेख लिखा था जो उनकी साहित्यिक और वैचारिक परिपक्वता की मिसाल है। इस लेख के हवाले से रतन लाल भाषा के प्रश्न पर काशी प्रसाद जायसवाल को साम्प्रदायिकता के आरोपों से बरी करते दिखाई देते हैं। इस लेख में जायसवाल लिखते हैं कि 'दो चार को छोड़ कर प्राय: सभी बंग भाषा से अनूदित उपन्यासों में एक सामान्य दोष है— और उसी दोष के लिए हमारी उलाहना है। वह महादोष यह है— मुसलमानों के चरित्र का ऐसा चित्र खींचना कि जिससे यह भाव पैदा होने लगे कि संसार भर के मनुष्य जाति में सबसे नीच, दुष्ट, अत्याचारी, विश्वासघातक ये ही होते हैं— सभी अवगुण और पापों के मुसलमान अवतार हैं! पृथ्वी तल पर किसी विशेष जाति व सम्प्रदाय के जनमात्र दुष्ट या पापी नहीं हो सकते। सबों में अच्छे और बुरे होते हैं। हिंदू-मुसलमानों में मेल करना तो दूर रहा, इस प्रकार दिन-दिन दोनों में घृणा और द्वेष बढ़ाया जा रहा है! देश का अहित करने वालों में यों उपन्यास लेखकों का भी साझा है! ...हमारे देश हितैषी उपन्यास लेखको! आपसे यह हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि ऐसी चेष्टा किया कीजिए जिसमें हिंदू-मुसलमान दोनों मिल जाएँ, आपकी लेखनी में बड़ी शक्ति है, आप जो चाहें कर सकते हैं।'

इसी तरह एक अन्य लेख 'भाषा का महत्त्व' में अपने विचार जायसवाल कुछ यूँ पेश करते हैं, '...भाषा से ही मनुष्य, पशु से अलग पहचाना जाता है, भाषा से ही मनुष्य अपने को पहचानता है, भाषा ही उसकी अमूल्य पैतृक सम्पत्ति है, भाषा से ही वह समस्त सृष्टि का महाराज है, अधिक क्या, भाषा ही से मनुष्य मनुष्य है। सो उसी भाषा को, उसी भाषा के शास्त्र को ना जानना, उसी भाषा के मर्मों को न समझना, उसी भाषा की अवहेलना करना, क्या मनुष्य जाति के लिए लज्जा का कारण नहीं है? जन्म लेना और भाषा के महत्त्व को बिना पहचाने मर जाना, क्या जीवन में बड़ी भूल नहीं है?'

II

हिंदी के झण्डाबरदार

भाषा पर काशी प्रसाद जायसवाल के विचारों की जब पोटली खुलती है तो यह बात उभर कर सामने आती है कि जायसवाल भाषा को ईश्वर-निर्मित नहीं मानते, अपितु वह इसमें मानवीय हस्तक्षेप की भूमिका स्वीकार करते हैं। भाषा के लाभ गिनाते हुए उक्त निबंध में वे कहते हैं कि 'भाषा के लाभ अनंत हैं। भाषा की घनिष्ठता अद्‌भुत है। भाषा का संबंध लोकोत्तर है। लोगों की समझ में रुधिर का संबंध बड़ा घनिष्ठ और सबल है। पर हम दोनों भुजा उठाकर ललकारते हैं कि भाषा का संबंध, संसार के व्यापक संबंधों से कहीं जोरावर है। ... रुधिर की एकता भाषा की एकता के बिना व्यर्थ है और भाषा की एकता रुधिर की विभिन्नता रहते भी एकता सम्पादन करने वाली है। ... अंग्रेज़ों की यह उन्नति कदापि न हो सकती यदि उन सबों की भाषा एक ना होती। जर्मनी सा छिन्न-भिन्न देश भाषा की एकता सूत्र में गठित होकर राष्ट्र को दृढ़ करता है। भाषा की एकता सब एकताओं की जननी है।' जायसवाल अपने लेखों में बताते हैं कि कैसे सम्प्रेषण के अभाव में भारतीय और पाश्चात्य जगत एक-दूसरे को हीन-दृष्टि से देखते थे, लेकिन जब संस्कृत और युरोपीय भाषाओं में संबंध होने का नया विमर्श भारोपीय भाषा का विमर्श बनकर सामने आया तो जायसवाल ने उसे कम चौंकाने वाला नहीं माना, वे लिखते हैं, '...एक भूकम्प आया, और सारा दुर्विचार पलटा खा गया। यह भूकम्प भाषा-शास्त्र के अध्ययन करने वालों का एक अद्‌भुत आविष्कार था। उन लोगों ने सिद्ध कर दिखलाया कि इन कालों की आदि भाषा संस्कृत, पश्चिमवालों की ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि की बहन, बड़ी बहन है। ... दोनों एक ठौर के भूमिये हैं; दोनों एक पिता के दो पुत्रों के समान हैं। अत: भाषा-शास्त्र ने दोनों में अभूतपूर्व प्रेम उत्पन्न किया।'

रतन लाल मानते हैं कि हिंदी और नागरी का प्रश्न जायसवाल की लेखनी का एक अत्यंत अहम

प्रश्न है। इस बारे में उनका लेख 'पुराणी हिंदी का जन्म-काल और 1933 के साल का भागलपुर' (हिंदी प्रांतीय अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण) मील का पत्थर है। मध्य प्रांत से प्राप्त विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों के अध्ययन के आधार पर जायसवाल ने हिंदी का उद्‌भव काल तक़रीबन ढाई सौ वर्ष पीछे अर्थात् 750 ई. के आस-पास स्थापित किया। इसके लिए उन्होंने तीक्ष्ण इतिहास दृष्टि से हिंदी की निरंतरता स्थापित करने के लिए सिक्कों जैसे कठिन स्रोतों के इस्तेमाल की विधा न्यूमिसमेटिक्स का इस्तेमाल किया। जायसवाल ने आधुनिक हिंदी-काव्य और छंद प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए बताया कि जिस तरह भाषा बहुत संस्कृतग्राही हो रही है उससे आम जनता और स्त्रियों को इसे समझने में कठिनाई होती है। इसे बचने के लिए जायसवाल बोलचाल की घराऊँ हिंदी को लेखन में प्रचलित बनाने का पक्ष रखते हैं।

'पठानी सिक्कों पर नागरी' नामक लेख में जायसवाल और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ग़ुलाम वंश के दर्जनों सिक्कों का विश्लेषण किया और निष्कर्ष निकाला कि 'मुहम्मद (मुहम्मद-बिन-साम) से लेकर इब्राहीम लोदी तक पठानों ही के विजय क्षेत्र कुरुक्षेत्र मुग़लमहीप बाबर द्वारा उनके पतन तक की राजमुद्राओं पर नागरी अक्षर छपे हुए हैं ... पठानों के बाद मुग़लों के समय में जब हिंदी की जगह उर्दू नाम की नयी हिंदी का प्रचार हुआ तभी से सिक्कों पर नागरी का छपना भी बंद हुआ ... इससे सिद्ध होता है कि मुसलमान बादशाहों ने नागरी लिपि को इस देश की प्रधान लिपि माना था। यदि ऐसा न होता तो वे कदापि इस लिपि का व्यवहार अपने सिक्कों पर न करते।' ब्रिटिश सरकार की भाषा-नीति की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है, 'बड़े खेद और आश्चर्य की बात है कि हमारी परम सभ्य और परम न्यायी गवर्नमेंट ने राजराजेश्वर के नवीन रुपये पर नागरी अक्षरों को न रख कर फ़ारसी अक्षरों में एक रुपया रखा है। यह अनुचित है। इसका शीघ्र ही संशोधन होना चाहिए। फ़ारसी लिपि की अपेक्षा नागरी लिपि ही के जानने वाले सब प्रांतों में अधिक हैं। इसलिए उसी लिपि का प्रयोग सिक्कों पर होना चाहिए।'

पेशे से वकील और चित्त से स्वाधीनता सेनानी काशी प्रसाद जायसवाल ने भारतीय इतिहास, पुरातत्व, मुद्राशास्त्र, भाषा-लिपि संबंधी अपने अध्ययन-अनुसंधान और चिंतन से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ बौद्धिक लड़ाई लड़ी और भारतीय जनमानस को पश्चिम के सत्तामूलक वर्चस्व से मुक्त करने का प्रयास किया। साथ ही यह भी कि औपनिवेशिक सत्ता के दमन से त्रस्त और निराश भारतीय जनमानस को बौद्धिक रूप से सम्पन्न बना कर उसका आत्मविश्वास जगाने के लिए बहुविध प्रयासों में काशी प्रसाद जायसवाल के लेखन का अप्रतिम योगदान है।

हिंदी भाषा के प्रयोग के मामले में जायसवाल हमेशा सहज हिंदी के प्रयोग के पक्षधर रहे। सहज हिंदी की उपयोगिता पर बल देते हुए गौतम बुद्ध के दृष्टांत के माध्यम से उन्होंने बताया कि उनके उपदेशों को आम लोगों की भाषा (वेद-भाषा संस्कृत की जगह मागधी) में ही लिपिबद्ध किया गया। रतन लाल ने जायसवाल के एक शिष्य मोहन लाल महतो वियोगी के हवाले से बताया है कि भाषा के उपयोग पर जायसवाल सदा घराऊँ हिंदी की वकालत करते थे, घराऊँ यानि ऐसी सहज हिंदी जो महिलाओं और बच्चों को भी आसानी से समझ आ जाए।

रतन लाल ने संचयन के पहले खण्ड के दूसरे हिस्से में जायसवाल द्वारा रचित कविताओं का संग्रह किया है। उन्होंने बताया है कि यद्यपि भारतेंदु के समय से ही कविता-लेखन बौद्धिक कसरत

का प्रमुख साधन रहा है, फिर भी कविता की भाषा के प्रश्न पर कोई एक राय नहीं बन पाई। जायसवाल ने 'काशी नागरी सभा के प्रश्नों के उत्तर' में भारतेंदु को उद्धृत करते हुए लिखा कि पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है, यह निर्णीत हो चुका है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आये हैं ... जो हो, मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है।'

रतन लाल मानते हैं कि काशी प्रसाद जायसवाल को किसी भी तरह बहुसर्जक कवि नहीं कहा जा सकता। अपने जीवनकाल में जायसवाल ने दो ही कविताएँ लिखीं— 'स्वर्ण' और 'कवि-कीर्ति' जो *सरस्वती* में प्रकाशित हुईं। बाद में जायसवाल के मित्र राहुल सांकृत्यायन ने उनकी निजी डायरी से आठ कविताएँ प्राप्त कीं जिन्हें *डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल कोमोमोरेशन वॉल्यूम* में प्रकाशित किया गया। कविता की भाषा-शैली और कथ्य की समीक्षा करके रतन लाल इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि जायसवाल कविता के क्षेत्र में भी अपने पाँव धरते तो निस्संदेह वैसे ही मशहूर होते जैसे इतिहासकार, मुद्राशास्त्री, पुरालिपिशास्त्री, भाषाविद्, साहित्यकार और अधिवक्ता के तौर पर हुए। राहुल द्वारा संगृहीत कविताओं 'गोतामार', 'नर और नारायण', 'तथ्य गीता', 'अग्निगिरी का बेढ़ब उलाहना', 'देवों का भारत' पर टिप्पणी करते हुए रतन लाल जायसवाल को एक नास्तिक, प्रतिबद्ध देशभक्त और पूर्णत: धर्मनिरपेक्ष नहीं तो कम से कम ग़ैर-साम्प्रदायिक ज़रूर मानते हैं। रामधारी सिंह दिनकर के हवाले से वे बताते हैं कि दिनकर की कविताओं के प्रति उनका जैसा रवैया था, उससे प्रतीत होता है कि संसार में जितनी भी अच्छी चीज़ें हैं, जायसवाल कविता को उनमें सबसे श्रेष्ठ समझते थे।

हिंदी की विकास यात्रा में भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा लक्ष्मण सिंह, अयोध्या प्रसाद सिंह हरिऔध और महेशचरण सिंह सहित बहुतेरे विद्वानों की जीवनियों के साथ-साथ में अभारतीय हिंदी सेवियों के जीवन चरित प्रकाशन में जायसवाल की भूमिका को रतन लाल ने रुडोल्फ़ हार्नली पर लिखे उनके लेख के माध्यम से जानकारी दी है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के विरोध के बावजूद जायसवाल ने हिंदी के हार्नली समेत विदेशी विद्वानों जी.ए. ग्रियर्सन, एफ़.एस. ग्राउस और जॉन बीम्स पर संक्षिप्त जीवन परिचय के उनके योगदान संबंधी लेख प्रकाशित किये।

इसके साथ ही काशी प्रसाद जायसवाल के हिंदी लेखन में यात्रा-वृत्तांतों का संकलन रतन लाल की उपलब्धि है। यात्रा-वृत्तांत लेखन में यात्री खुद अपनी सामाजिक स्थिति और अपनी धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान के प्रति सचेत होता है। ऐसी स्थिति में यात्रा किसी देश का एक नक़्शा तैयार करने जैसी क्रिया होती है जिसे यात्री अपने आनुभविक और सांस्कृतिक स्तर पर हासिल करता है। जायसवाल के इस लेखन में उनकी सांस्कृतिक अस्मिता यात्री के विचरण वाले स्थान से एकजुटता और पृथकता के द्वंद्व से लैस है। इसी सजगता को यात्री अपने अनुभव, अपने बयानों को पाठकों से बाँटकर खुश होता है। रतन लाल ने इस लेखन को दो भागों में बाँटकर देखा है : इंग्लैण्ड में अध्ययन के दौरान और अध्ययन समाप्ति के बाद थल-मार्ग से हंगरी, तुर्की और श्रीलंका होते हुए वापसी के सफ़रनामे के तौर पर। इन वृत्तांतों में जगह और संस्थानों के इतिहास, संस्कृति, रहन-सहन, आचरण-व्यवहार आदि का सूक्ष्म और सटीक वर्णन परिलक्षित होता ही है, साथ ही जायसवाल बार-बार की भारत की संस्कृति, इतिहास और परम्पराओं से उसकी तुलना भी करते चलते हैं। तुर्की संबंधी यात्रा-वृत्तांत में भविष्य के प्रति उम्मीद भरी हसरत, इंग्लैंड में लिखे वृत्तांत में विलायत में उपाधियों का क्रय-विक्रय, हंगरी के वृत्तांत में सालों से चली आ रही सामरिक और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के रोचक विवरण जायसवाल के विचारों में सभ्यताओं के संघर्ष के विचार को रेखांकित करते हैं। जायसवाल अपनी भारतीय संस्कृति पर गर्व तो करते हैं, पर वे अंध-भक्त नहीं हैं। दो खण्डों में लिखे गये अपने लेख

'युरोप के और हमारे विचार' में उन्होंने भारत की कमज़ोरियों और अंधविश्वासों की आलोचनात्मक चर्चा भी की है। 1910 में अध्ययन से अपनी वापसी पर जायसवाल ने श्रीरामेश्वरम की यात्रा की। मंदिर के इतिहास की चर्चा में उन्होंने तार्किक रूप से बताया कि कैसे यह पहले बौद्ध मंदिर था। साथ ही मंदिर के केंद्र में स्थित बुद्ध की मूर्ति को पण्डों द्वारा असुर बताए जाने और लोगों से चपत लगवाए जाने को पापाचार कह कर जायसवाल ने दु:ख भी जताया।

III

वैचारिकी का विस्तार

संचयन का दूसरा खण्ड जायसवाल द्वारा *पाटलिपुत्र* में लिखे उनके सम्पादकीय लेखों सहित विभिन्न अकादमिक कार्यक्रमों एवं गोष्ठियों में उनके व्याख्यानों का संकलन है। जायसवाल ने एक सम्पादक और लेखक की हैसियत हिंदू राज्य-शास्त्र और अशोक की धर्मलिपि पर लेखों की एक क्रमबद्ध शृंखला भी प्रकाशित की थी। दूसरे खण्ड में अंग्रेज़ी में लिखे-बोले कई लेखों-व्याख्यानों का हिंदी अनुवाद शामिल करके रतन लाल ने हिंदी वालों का एक तरह से उपकार ही किया है।

1914 में जायसवाल ने पटना को अपना स्थायी निवास बनाया। उस साल पहले विश्व-युद्ध की शुरुआत हुई थी, हिंदी-उर्दू की रस्साकसी ज़ोरों पर थी, भारत में गाँधीवादी राष्ट्रवाद ने अभी जोर नहीं पकड़ा था, और रूस की तरह विश्व में कई देशों में वैचारिक उथल-पुथल का समय था। ऐसे समय में *पाटलिपुत्र* के नीति-निर्देशक उद्देश्यों के ज़रिये जायसवाल की विचार-दृष्टि की लीक पकड़ी जा सकती है। इस दौर में जायसवाल हिंदू परम्पराओं को अपने लेखन, अपनी शब्दावली, अपने कहन का आधार बनाते हैं। उनके मुहावरे, प्रेरणाएँ, उनके दृष्टांत हिंदू शास्त्रीय ग्रंथों में उद्धृत होते हैं। वे *रामायण, महाभारत,* धर्मशास्त्र सहित प्राचीन ग्रंथों से प्रतीकों और रूपकों का प्रयोग करते हैं। संचयन के इस खण्ड में रतन लाल दिखाते हैं कि कैसे जायसवाल आर्य और हिंदू में कोई अंतर किये बिना ही इन शब्दों-प्रतीकों-रूपकों का उपयोग करते हैं, साथ ही यह भी किस तरह बेखटक जायसवाल भारत के सभी समुदायों के लिए अमूमन हिंदू शब्द का ही प्रयोग करते हैं। चूँकि राम जायसवाल के लिए आदर्श नायक हैं, इसलिए उनका स्वराज भी रामराज्य के ही समरूप उभर कर सामने आता है। इसी रामराज्य में जायसवाल हिंदू-मुस्लिम एकता के सपने को भी फलीभूत होता देखते हैं।

भाषा और लिपि के सवाल पर जायसवाल के पत्रकारीय लेखन में उठे मुद्दों को हिंदी बनाम मैथिली, हिंदी बनाम बंगाली और कैथी बनाम नागरी की बहस को संचयन का यह खण्ड बख़ूबी उठाता है। साथ ही यह भी कि जहाँ अन्य जगहों पर हिंदी भाषा आंदोलन हिंदू-मुस्लिम प्रश्न से जुड़ा हुआ था वहीं बिहार में यह भाषा की राजनीति जातीय अस्मिताओं के साथ गहनता से जुड़ी हुई थी। ब्राह्मण-कायस्थों को मिथिला का स्वघोषित प्रतिनिधि घोषित किये जाने पर यादवों का ज़बरदस्त विरोध जगज़ाहिर है। हालाँकि, जायसवाल हिंदी और नागरी के पक्षपाती थे, परंतु हिंदी-मैथिली विमर्श में भाषा-चुनाव के सवाल पर उन्होंने आत्म-स्वछंदता पर ही बल दिया और हिंदी-भाषियों को सलाह दी कि हिंदुओं को मुसलमानों से सीखना चाहिए कि उन्होंने कभी बिहारी उर्दू, सैयदी उर्दू या मैथिली उर्दू की वकालत नहीं की। मैथिली-हिंदी विवाद पर जायसवाल के अनुसार जहाँ एक तरफ़ मिथिला के ब्राह्मणेतर जाति वाले अपनी साधु भाषा हिंदी ही मानते हैं, वहीं दूसरी ओर मैथिली-भाषियों को नागरी की आवश्यकता पर समझाते हुए वे कहते हैं कि, 'भाषा मनुष्य के लिए है, कुछ मनुष्य भाषा के लिए नहीं पैदा हुए हैं। भारत की देशीयता यह नहीं है कि वह टुकड़े-टुकड़े हो। ... मनुष्य को सदा अधिकार है कि वह अपनी भाषा चुन सकता है। वह अपनी भाषा का विधाता है।'

कैथी बनाम नागरी की बहस में जायसवाल लिखते हैं, 'जब स्कूल में नागरी अक्षर सिखलाए जाते हैं, स्कूली किताबें नागरी में छपती हैं और सब प्रांतों में पत्र नागरी अक्षर में छपते और पढ़े जाते

हैं, ऐसी दशा में कैथी में सरकारी काग़ज़ नहीं छपने चाहिए ... एक बार लोगों को स्कूल में नागरी सीखनी होती है, फिर अदालत के काम के लिए कैथी सीखने की आवश्यकता पड़ती है। ... नागरी के प्रचार से मुसलमानों तथा छोटानागपुर वालों को भी सुभीता होगा। ... मिथिला संस्कृत की भूमि है पर वहाँ नागराक्षरों का राज्य है। छोटानागपुर में पादरियों द्वारा नागरी की ही शिक्षा दी जाती है। ... मुसलमान हाक़िम किसी न किसी तरह नागरी पढ़ भी सकते हैं, पर कैथी से वे हमेशा अपरिचित ही रहते हैं।' इस बहस में बीच का रास्ता दिखाते हुए जायसवाल इस बात को उठाते हैं कि, ' ...अदालती लोग चाहें तो अभी कैथी में ही लिखें क्योंकि उसी की उन्हें आदत अधिक है। पर आगे चल कर इसका प्रयत्न हो कि यदि नागरी में लिखकर कोई काग़ज़ पेश किया जाए तो उसे लेने में उज्र न किया जाए। नागरी के लिए इस प्रकार द्वार खुल जाने से अभ्यासवश नागरी की उन्नति होती जाएगी और हिंदी-भाषी बिहार प्रांत में हिंदी अक्षरों की वस्तुतः प्रतिष्ठा हो पाएगी।' रतन लाल अपने संकलन के माध्यम से यह बताने में सफल प्रतीत होते हैं कि भाषा-लिपि के प्रश्न पर जायसवाल ने कैसे उदार रवैया अपनाया और यह भी कि क्यों वह यकायक कैथी को हटाए जाने के पक्ष में नहीं थे। देश-काल के अनुसार यह जायसवाल के विचारों में संक्रमण का काल था।

IV

राष्ट्रवादी इतिहासकार

इतिहासकार-सह-पत्रकार के रूप में जायसवाल ने इतिहास-विमर्श से जुड़े विषयों को पर्याप्त स्थान दिया। उन्होंने न केवल इतिहास से जुड़े कई विमर्शों को जन्म दिया, बल्कि 'इतिहास-प्रसंग' स्तम्भ के तहत अलग लेख भी छापे। रतन लाल दूसरे खण्ड में पाठकों को उस दौर में ले जाते हैं जब 1914-15 के दौरान जायसवाल ने हिंदू राज्यशास्त्र पर सात और अशोक की धर्म-लिपि पर दस खण्डों में लेख लिखने के अलावा इतिहास से जुड़े विषयों पर 'गाथा-सतसई', 'भारत में वीर पूजा', 'अशोक और भारतवर्ष', 'हमारा संवत्', और 'महाकवि भास के नाटक' शीर्षक सम्पादकीय लिखे। रतन लाल इस बात को रेखांकित करते हैं कि *पाटलिपुत्र* में इतिहास से जुड़े मुद्दे और इस तरह के सम्पादकीयों का प्रकाशन सम्भवतः हिंदी पत्रकारिता में पहली घटना थी। साथ ही वे यह बतलाने से भी चूके कि ये सारे प्रयास हिंदी पाठकों को प्राचीन भारत के इतिहास और बौद्धिक-साहित्यिक सम्पदा से परिचय कराने की उनकी रुचि को इंगित करते हैं। प्राचीन भारत के अ-राजतांत्रिक राज्य संबंधी अवधारणा पर *मॉडर्न रिव्यू* (1912-13) में प्रकाशित अपनी उल्लेखनीय रचनाओं में जायसवाल ने ऐतिहासिक शोधों द्वारा यह साबित किया कि प्राचीन भारत राजनीतिक रूप से भी विकसित था और प्राचीन काल में गणराज्यों का अस्तित्व था, जो अपना शासन स्वयं चलाते थे। उनके ये विचार 1924 में ग्रंथ रूप में *हिंदू पॉलिटी* शीर्षक से प्रकाशित हुए। प्राच्य-निरंकुशता की अभिधारणा को ग़लत सिद्ध करते हुए उन्होंने दर्शाया कि अतीत में न केवल सरकार का एक संवैधानिक स्वरूप था, बल्कि सम्पूर्ण संसदीय प्रणाली अस्तित्व में थी। बौद्ध संघों द्वारा ऐसे गणतांत्रिक राज्यों की प्रशासन प्रणालियों पर प्रकाश डालते हुए जायसवाल ने दिखाया कि इनमें प्राचीन भारत में प्रचलित राजसत्ता द्वारा सम्बोधन तथा वोटिंग ऑफ़ ग्रांट्स जैसी रीतियाँ भी शामिल थीं।

दो भागों में वर्गीकृत *हिंदू पॉलिटी* मुख्यतः वैदिक सभाओं और हिंदू गणराज्यों; तथा राजतंत्र और साम्राज्यवादी व्यवस्था पर चर्चा करती है। पहले भाग में जायसवाल अपने विचारों को मूर्त रूप देते हुए उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं और वैदिक शब्दावलियों, जैसे समिति, सभा आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के उपरांत गण और संघ रूप में विद्यमान हिंदू गणराज्य की विस्तार से चर्चा करते हुए कई नयी प्रस्थापनाओं का आगाज़ करते हैं। इस प्रक्रिया में जायसवाल मूलपाठों की सतर्क जाँच करते हैं, सवालों के घेरे में ही सही वे कई नये राज्यों का नामोल्लेख और कालनिर्धारण के नये पैमाने

प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि और उनके टीकाकारों की जाँच-पड़ताल द्वारा जायसवाल ने पहचान के नये मानदण्ड खड़े किये, और पूर्वस्थापित शब्दावलियों के अर्थों को पुनर्परिभाषित किया जैसे कि काशिका के ग्लौसुकायनाज़ का ग्लौगनिकायी या एरियन के ग्लौसाई से, मसुकर्निका का मौसिकनोस से, वासिति का ओसाडियोई से और अशोक के पितिनिकास का पाली के पेत्तिनिकास से। इस कृति में जायसवाल बताते हैं कि कैसे गण और संघ के आंतरिक घटक और प्रक्रियाएँ दोहरे राजत्व को दर्शाती हैं।

हिंदू पॉलिटी के दूसरे भाग में तुलनात्मक रूप से नवीन अध्याय की रचना करते हुए जायसवाल उसमें जनपदीय प्रणाली अथवा क्षेत्रीय सभाओं और पुर अथवा राजधानी क्षेत्र की सभा का वर्णन करते हैं। पुर (अथवा नगर) और जनपद जैसी दो महत्त्वपूर्ण शब्दावलियों के बहुतेरे उद्धरणों द्वारा जायसवाल दिखाते हैं कि कैसे दोनों स्थानों के लोग एक दूसरे के साथ व्यवहार करते थे। इस भाग में उन्होंने बताया है कि भारतीय राजाओं पर सांविधानिक दबाव रहता था। उनके तानाशाही रवैये पर औपचारिक बंधन था, जिसे बाद के एक ग्रंथ *शुक्रनीति-सार* द्वारा मोटे तौर पर अपना लिया गया। साथ ही वे इस बात पर भी प्रकाश डालते हैं कि वह कोई बंधन नहीं था, अपितु वह भारतीय राजव्यवस्था में व्याप्त सांस्कृतिक प्रवृत्ति थी जिसने शासकों पर अंकुश लगाया। इस कृति में जायसवाल ने संधिविग्रहिक, प्रतिज्ञा और गणतांत्रिक मंत्रिमंडलों के स्वरूप संबंधी विवरणों के साथ विधिक साक्ष्यों के आधार पर भू-स्वामित्व संबंधी राज्य के अधिकारों को बयान करने वाले परिच्छेदों का उल्लेख किया है। साथ ही यह भी बताया कि राजत्व के दैवी सिद्धांत और सामाजिक समझौते संबंधी स्थापनाएँ बहुत पहले से भारतीय समाज में व्याप्त रही हैं।

काशी प्रसाद जायसवाल की कुछ संकल्पनाओं की आलोचना करते हुए ए.एल. बाशम ने कहा है कि कैसे जायसवाल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *हिंदू पॉलिटी* में निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए और अपनी अभिधारणा की सिद्धि के लिए विशाल परिमाण में स्रोतों का प्रयोग किसी बैरिस्टर की भाँति करते हुए एक अनुकूल न्यायिक फ़ैसला पाने का प्रयत्न किया। अपने विरुद्ध सभी साक्ष्यों को दरकिनार करते हुए उन्होंने हर ऐसे अनुच्छेद पर बल दिया जो उनके मामले को मजबूत बनाता हो और सर्वाधिक सकारात्मक आलोक में इसकी व्याख्या करता हो।

मध्य प्रांत से प्राप्त विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों के अध्ययन के आधार पर जायसवाल ने हिंदी का उद्भव काल तक़रीबन ढाई सौ वर्ष पीछे अर्थात् 750 ई. के आस-पास स्थापित किया। इसके लिए उन्होंने तीक्ष्ण इतिहास दृष्टि से हिंदी की निरंतरता स्थापित करने के लिए सिक्कों जैसे कठिन स्रोतों के इस्तेमाल की विधा न्यूमिसमेटिक्स का इस्तेमाल किया। जायसवाल ने आधुनिक हिंदी-काव्य और छंद प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए बताया कि जिस तरह भाषा बहुत संस्कृतग्राही हो रही है उससे आम जनता और स्त्रियों को इसे समझने में कठिनाई होती है। इससे बचने के लिए जायसवाल बोलचाल की घराऊँ हिंदी को लेखन में प्रचलित बनाने का पक्ष रखते हैं।

यद्यपि काशी प्रसाद जायसवाल ने दिखाया है कि मध्य-एशियाई तथा कुछ अन्य क़बीले भारतीय जीवन के अविभाज्य अंग होने के कारण भारत से सम्पत्ति लूटकर अपने मूल देश नहीं ले गये थे, लेकिन उन पर शकों और कुषाणों के शासन से मुक्त कराने में भारतीय राजवंशों की भूमिका को बढ़ा-

चढ़ा कर दिखाने का आरोप लगाया जाता है। उन पर और भी आरोप लगाए जाते हैं : जैसे, उन्होंने प्राचीन संस्थाओं पर आधुनिक राष्ट्रीय भावना की कलई चढ़ा दी है। साथ ही प्राचीन भारत में उत्तरदायी सरकार के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जायसवाल ने अभिलेखों और साहित्यिक पाठों में उल्लिखित शब्दों और अनुच्छेदों को नयी व्याख्याओं के साँचे में ढालते हुए गणतंत्रीय प्रशासन का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है उस पर यू.एन. घोषाल (1886–1969) सहित बहुत से लेखकों ने आपत्ति की है। इन आलोचनाओं के बावजूद गणतांत्रिक प्रयोग की प्रथा के बारे उनकी मूल धारणा व्यापक रूप से मान ली गयी है और इसीलिए उनकी अग्रणी कृति *हिंदू पॉलिटी* क्लासिक रचना मानी जाती है।

V
इतिहास-दृष्टि

अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मलेन (इंदौर, 1935) में गाँधी के सामने भारतीयों द्वारा इतिहास न लिखे जाने पर गम्भीर चिंता व्यक्त करते हुए जायसवाल ने कहा कि 'यदि आप लोगों में से कोई साहब कमर कसकर खड़े हो जाएँ, और कुछ धन इतिहास लिखने में लगाएँ तो लेखक मण्डल क़ायम कर प्राचीन इतिहास ठिकाने से लेखबद्ध करा सकते हैं।' गाँधी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जायसवाल के विचारों से सहमति जताई। जायसवाल ने भारतीयों द्वारा भारत के इतिहास लिखने की प्रतिबद्धता को 1936 में भारतीय इतिहास परिषद् की स्थापना कर पूरा किया।

1936 के जून में उन्होंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन) में साक्ष्यों के आधार पर साबित किया कि मौर्यों, उनके उत्तराधिकारी शुंगों और दक्षिण में सातवाहनों ने आपने-अपने सिक्के ढाले जिससे साबित होता है कि मौर्यों और शुंगों की अपनी-अपनी मुद्रा प्रणाली थी। न्यूमिसमेटिक्स सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया के अधिवेशन (उदयपुर, 1936) में जायसवाल ने मुद्राशास्त्र में तब तक के अन्वेषण का ख़ाक़ा प्रस्तुत करते हुए यौधेय गणतंत्र के इतिहास और भौगोलिक विस्तार का वर्णन किया और निष्कर्ष निकाला कि अभिलेखों के साथ सिक्के प्रमाणित करते हैं कि महाभारत और पुराणों में वर्णित यौधेय संघ में बृहत् संघीय गणतांत्रिक राज्य था। सिक्कों से हमें पता चलता है कि यौधेय फ़ेडरेशन कम-से कम तीन और गणतंत्रों का संघ था।

संचयन के तीसरे खण्ड में पत्रों का संकलन है जिन्हें रतन लाल ने बड़े जतन से बिहार राज्य अभिलेखागार, भारत कला भवन, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के एकत्र किया है। इसके अलावा संचयन के आख़िर में परिशिष्ट रूप में उपलब्ध कराए काशी प्रसाद जायसवाल के अंग्रेज़ी लेखन और व्याख्यानों की सूची, हिंदू प्रिवी-काउंसिल अदालत, अशोक संबंधी शब्दों के अर्थ और हस्तलिखित पत्रों का संकलन जायसवाल को समग्र रूप से समझने के लिए ज़रूरी है। इसके लिए डॉ. रतन लाल साधुवाद के पात्र हैं।

जायसवाल ने *स्मृति* (1924) और चण्डेश्वर के *राजनीति-रत्नाकर* का सम्पादन और डॉ. अनंत प्रसाद शास्त्री के साथ मिल कर दो भागों में विभाजित *अ डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ़ (संस्कृत) मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला* का संकलन किया। साथ ही जायसवाल ने *गंगा-संहिता* पर अपनी प्रसिद्ध ऐतिहासिक टीका *युग-पुराण* का सम्पादन भी किया।

1300-25 के दौरान मूलतः संस्कृत में लिखी गयी चण्डेश्वर की कृति *राजनीति-रत्नाकर* को जायसवाल ने हिंदू और मुस्लिम युग की संक्रमण कालावधि को दर्शाने वाली माना है। सोलह तरंगों अर्थात् अध्यायों में बँटी यह कृति क्रमशः राजा, मंत्री, राजप्रासाद, प्रद्विवेक या मुख्य-न्यायाधीश, न्यायाधीश, दुर्ग, मंत्रणा-परिषद्, कोष, सैन्य शक्ति, सेना, दूत-गुप्तचर-मित्र, राजा के कर्तव्य, दण्ड, राजा द्वारा राज्य का हस्तांतरण, मृत्यु उपरांत प्रतिनिधि शासन और राज्याभिषेक का विवेचन प्रस्तुत करती है। *मनु ऐंड याज्ञवल्क्य, अ कम्पेरिजन ऐंड अ कंट्रास्ट : अ ट्रीटाइज़ ऑन द बेसिक हिंदू लॉ* (1930)

में जायसवाल बताते हैं कि मनु आधारित सिद्धांत मूलत: रिवाजमूलक थे जो ब्राह्मणवाद के प्रभाव से एक व्यवस्थागत रूप में पवित्र नियमों में बदल गये। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* का काल निर्धारण करते हुए जायसवाल ने मनु के काल से भी पहले का अर्थात् इसे ईसापूर्व 300 का मानते हुए मनु और याज्ञवल्क्य के विधि-संग्रह को कौटिल्य की संहिता का ही परिष्कृत और ब्राह्मणवादी रूप माना।

बौद्ध तांत्रिक ग्रंथ *मंजुश्री-मूलकल्प* में प्राय: आद्याक्षरित रूप से अंकित राजों और राजवंशों के अस्पष्ट नामों की पहचान करके कालक्रमानुक्रम अनुसार व्यवस्थित करते हुए जायसवाल ने 1934 में *एन इम्पीरियल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया इन संस्कृत टेक्स्ट (सी. 700 बी.सी-सी.ए.डी. 770)* की रचना की। इसमें संस्कृत पाठों को शुद्ध करने के लिए राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बती पाठों को मुहैया करा कर जायसवाल की मदद की। तिब्बत की यात्रा करते हुए उन्होंने अपने मित्र सांकृत्यायन और उनके उत्साही प्रयास द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों को प्राप्त किया। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में स्वयं जायसवाल ने नेपाल की यात्रा की और 1936 में एक लम्बे लेख द्वारा (जो बाद में अलग से विस्तृत रूप से प्रकाशित हुआ) भारत के कालक्रम को दर्शाते हुए *फ्रॉम 600 बी.सी टू ए.डी. 880* लिखा।

हिंदू पॉलिटी (1924) के अतिरिक्त जायसवाल के सुपरिष्कृत और विशिष्ट अवदानों में प्रमुख हैं : *डिवेलपमेंट ऑफ़ लॉ इन मनु ऐंड याज्ञवल्क्य* विषय पर आधारित टैगोर लॉ लेक्चर्स के तहत दिए गये व्याख्यानों का संकलित संस्करण और *द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, ए.डी. 150 टू ए.डी. 350* (1933)। *हिंदू पॉलिटी* में जहाँ उन्होंने मनु के नियमों की प्रस्थापना, सर्जना और रचना काल को उल्लिखित किया है, वहीं *द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* में जायसवाल ने स्वयं द्वारा प्राप्त किये गये पुरातात्विक साक्ष्यों की मदद से नागा और वाकाटक राजवंशों के इतिहास पर प्रकाश डाला। नाग और भारशिव वंश का अध्ययन जायसवाल की इतिहास-लेखन योजना का कितना अहम् अंग था, यह इस बात से समझा जा सकता है कि विन्सेंट स्मिथ ने अपनी *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* में वर्णित कुषाण-सातवाहन और गुप्तकाल के बीच के समय को अंधकार युग का दर्जा दिया, तो जायसवाल ने इसका खण्डन करते हुए इसके जवाब में *हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* लिखी। बाद में यह रचना *अंधकारयुगीन भारत* शीर्षक से हिंदी में उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हुई।

एक विद्वान की हैसियत से काशी प्रसाद जायसवाल ने 11 किताबें, 120 से अधिक रिसर्च पेपर्स, बहुत से अनुवाद और टीकाएँ लिखीं। आधुनिक बिहार में नालंदा विश्वविद्यालय जैसे प्राचीन स्थानों की खुदाई और उसकी पुनर्स्थापना संबंधी कार्रवाइयों में अगुआ की भूमिका निभायी। जायसवाल ने मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में हासिल किये ज्ञान और अपनी तार्किक मेधा से पटना में उत्खनन के दौरान प्राप्त मौर्य और गुप्तकालीन सिक्कों की खोज की और ऐसा करने वाले पहले भारतीय बने। 4 अगस्त, 1937 को पटना में उनका निधन हुआ।

VI
निष्कर्ष

संचयन के माध्यम से डॉ. रतन लाल ने यह दिखाने में बखूबी सफल हुए हैं कि जायसवाल जहाँ एक ओर भारतीयों द्वारा भारत के गौरवशाली इतिहासलेखन सहित भाषा-लिपि के मुद्दे पर हिंदी की पक्षधरता के राष्ट्रवादी आह्वान से प्रभावित दिखाई देते हैं, वहीं दूसरी ओर हिंदी की छाप-संस्कृति के शुरुआती दौर में अलहदा क़िस्म के इतिहास-सम्मत कौशल से देश-समाज को रूबरू कराते हैं।

इतिहासकार, साहित्यकार, मुद्राशास्त्री, पुरातत्वविद्, भाषाविद्, वकील और पत्रकार के रूप में काशी प्रसाद जायसवाल का लेखन बताता है कि कैसे हिंदुओं के धार्मिक-भाषाई-सांस्कृतिक मुद्दों से प्रेरित वैचारिक आंदोलनों ने भारत भर में धार्मिक रूप से महत्त्वपूर्ण शहरों, संस्कारों, रीतियों और संस्थाओं में भारतीय राष्ट्रवाद सहित हिंदी, हिंदू को परिलक्षित करते प्रतीकों की स्थापना का मार्ग

प्रशस्त किया— साथ ही बाद में कैसे इसने वैचारिक रूप से अपनी स्थापना की प्रक्रिया और निर्माण के बृहत्तर काल में हिंदू धर्म के राष्ट्रीय स्वरूप को गढ़ा। वे एक बहु-आयामी प्रतिभा सम्पन्न लेखक थे। पेशे से वकील और चित्त से स्वाधीनता सेनानी काशी प्रसाद जायसवाल ने भारतीय इतिहास, पुरातत्व, मुद्राशास्त्र, भाषा-लिपि संबंधी अपने अध्ययन-अनुसंधान और चिंतन से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ बौद्धिक लड़ाई लड़ी और भारतीय जनमानस को पश्चिम के सत्तामूलक वर्चस्व से मुक्त करने का प्रयास किया। साथ ही यह भी कि औपनिवेशिक सत्ता के दमन से त्रस्त और निराश भारतीय जनमानस को बौद्धिक रूप से सम्पन्न बना कर उसका आत्मविश्वास जगाने के लिए बहुविध प्रयासों में काशी प्रसाद जायसवाल के लेखन का अप्रतिम योगदान है।

ऐसे समय में जब विचारकों का एक बड़ा ख़ेमा आज भी जातीय अस्मिता के सुदृढ़ीकरण बनाम सुधारवाद के संघर्ष को राष्ट्रवाद का ही एक संघर्ष मानता है, *काशी प्रसाद जायसवाल (संचयन)* उस समय के इतिहास की रूपरेखा रचने-समझने में सहायक होगा। साथ ही यह जातीय एकरूपता में भारतीयता के साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद के विमर्श में हिंदी, हिंदू और हिंदुत्व के मुद्दे का उभार को समझने में उपयोगी सिद्ध होगा। इसके अलावा इस उभार के मूल में निहित समुदायवादी पुनरुत्थान की राजनीति और भाषाई-धार्मिक-सांस्कृतिक अस्मिता संबंधी वर्तमान चुनौतियों से निबटने में एक नीतिगत समझ और वैचारिक आधार प्रदान करने में भी यह संचयन कारगर साबित होगा।